

आयकर आयुक्त, मद्रास

बनाम

एम/एस अमलगमेशन प्राइवेट लिमिटेड

25 अप्रैल, 1997

[माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. सी. अग्रवाल तथा माननीय न्यायमूर्ति श्री के. एस. परिपूर्णन]

आयकर अधिनियम, 1922 :

धारा 12-ख — पूंजीगत लाभ — करदाता कंपनी द्वारा अनेक कंपनियों के अंश धारण किए जाना — करदाता कंपनी एक वित्त कंपनी के प्रति ऋणी थी, जो उसकी सहायक कंपनी की सहायक कंपनी थी — दायित्व के परिसमापन हेतु, अंशों का विक्रय कंपनी विधि विभाग द्वारा केंद्रीय राजस्व बोर्ड से परामर्श के उपरांत वित्त कंपनी को निर्धारित मूल्यों पर किया गया — विक्रय का उद्देश्य, क्या तथ्यों पर कर दायित्व के अपवंचन अथवा उसमें कमी का परिणाम था — निर्णीत किया गया कि, संव्यवहार का उद्देश्य पूंजीगत लाभ कर के दायित्व का अपवंचन अथवा उसमें कमी करना नहीं था, क्योंकि विक्रय ऐसी कंपनी को किया गया था जिसके साथ करदाता कंपनी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध थी तथा विक्रय एक बाध्य विक्रय था, क्योंकि मूल्य कंपनी विधि प्रशासन द्वारा निर्धारित किया गया था — कंपनी अधिनियम, 1956—धाराएँ 295 तथा 372।

धारा 10(2)(15) — व्यवसाय हानि — कटौतीयोग्यता — सुसंगत वर्ष — करदाता अपनी सहायक कंपनी द्वारा लिए गए ऋण के लिए प्रत्याभूति पर स्थित था — सहायक कंपनी परिसमापन में चली गई — प्रत्याभूतिदाता से देय राशियों की वसूली की गई— करदाता को हुई हानि व्यवसाय हानि है, क्योंकि उसके व्यवसाय में अपनी सहायक कंपनियों को प्रत्याभूति प्रदान करना सम्मिलित है — निर्णीत किया गया कि, हानि का निर्धारण किया जा सकता था, किन्तु केवल परिसमापकों द्वारा अंतिम भुगतान किए जाने के चरण पर, तथा

कटौती उस निर्धारण वर्ष में अनुज्ञात होगी जो उस वर्ष से सुसंगत हो जिसमें परिसमापक द्वारा अंतिम भुगतान किया गया था।

व्यावसायिक व्यय — परीक्षण—व्यय तथा करदाता के व्यवसाय के मध्य संबंध का आवश्यक होना — करदाता कंपनी अनेक कंपनियों में बड़ी मात्रा में अंश धारण किए हुए थी तथा उसका व्यवसाय निवेश धारण करने का था — करदाता अपनी सहायक कंपनियों के निदेशकों को प्रबंधकीय पारिश्रमिक का भुगतान कर रही थी तथा धारा 10(2)(15) के अधीन ऐसे भुगतान की कटौती का दावा कर रही थी — किन्तु, भुगतान का कोई भी भाग ऐसी किसी सेवा से संबंधित नहीं था जो निदेशकों द्वारा सीधे करदाता कंपनी को प्रदान की गई हो — निर्णीत किया गया कि, उक्त व्यय का करदाता के व्यवसाय के साथ कोई प्रत्यक्ष तथा तात्कालिक संबंध नहीं है — अतः, कटौती अनुज्ञात नहीं की जा सकती थी।

करदाता-कंपनी अनेक कंपनियों में बड़ी मात्रा में अंशधारक थी तथा सुसंगत वर्ष में ऐसी 16 कंपनियाँ थीं। करदाता-कंपनी का व्यवसाय अपनी सहायक कंपनियों द्वारा लिए गए ऋणों के लिए प्रत्याभूति पर खड़ा होना तथा अपनी सहायक कंपनियों को कतिपय सामान्य सेवाएँ प्रदान करना था और उक्त सेवाओं के लिए करदाता-कंपनी को निदेशकों/प्रबंधकों को एक निश्चित राशि का भुगतान करना पड़ता था।

इन अपीलों में, करदाता कंपनी के कर-निर्धारण के संबंध में निम्नलिखित प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष विचारणा हेतु उत्पन्न हुए :

1. क्या करदाता कंपनी द्वारा अपनी सहायक कंपनी की सहायक कंपनी को, अपने दायित्व के परिसमापन में, कंपनी विधि प्रशासन द्वारा निर्धारित मूल्य पर विभिन्न कंपनियों के अंशों का विक्रय करने में हुई हानि पूंजीगत हानि की कोटि में आती है?

2. क्या करदाता-कंपनी द्वारा अपनी सहायक कंपनियों द्वारा लिए गए ऋणों के लिए प्रत्याभूति पर खड़े होने के कारण हुई हानि व्यवसाय हानि की कोटि में आती है?

3. क्या सहायक कंपनियों के निदेशकों द्वारा प्रदान की गई सामान्य सेवाओं के लिए करदाता कंपनी द्वारा उन्हें भुगतान की गई राशि, 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) अथवा 1961 के अधिनियम की धारा 37(1) के अधीन कटौतीयोग्य थी?

अपीलों को निरस्त करते हुए, इस न्यायालय ने

निर्णीत किया : 1. धारा 12-ख(2) के परंतुक के लागू होने के लिए प्रथम अपेक्षा यह है कि जिस व्यक्ति को विक्रय किया गया है, वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसके साथ करदाता प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हो। यह अपेक्षा पूर्ण हो गई थी, क्योंकि सहायक कंपनी की सहायक कंपनी को अंशों का विक्रय ऐसे व्यक्ति को किया गया विक्रय है जिसके साथ करदाता कंपनी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध है। परंतुक की दूसरी अपेक्षा, अर्थात् क्या विक्रय उस धारा के अधीन करदाता कंपनी के दायित्व के अपवंचन अथवा उसमें कमी करने के उद्देश्य से किया गया था, के संबंध में उच्च न्यायालय ने इंगित किया है कि आयकर अधिकारी ने यह निष्कर्ष नहीं दिया था कि जिस उद्देश्य से यह संव्यवहार किया गया था वह पूंजीगत लाभ कर के दायित्व के अपवंचन अथवा उसमें कमी करना था। संव्यवहार का उद्देश्य ऐसे पूंजीगत लाभ कर दायित्व का अपवंचन अथवा उसमें कमी करना नहीं था; विक्रय एक बाध्य विक्रय था क्योंकि करदाता कंपनी के पास कोई विकल्प नहीं था तथा मूल्य कंपनी विधि प्रशासन द्वारा निर्धारित किया गया था। अतः धारा 12-ख(2) के प्रथम परंतुक को लागू नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय ने 1922 के अधिनियम की धारा 12-ख(2) के परंतुक में निहित उपबंधों का यथोचित निर्वचन किया है। अतः उच्च न्यायालय का निष्कर्ष किसी विधिक त्रुटि से ग्रस्त नहीं है। [1013-एफ-एच; 1014-बी-सी; 1015-बी-सी]

2. करदाता कंपनी के व्यवसाय में उसकी सहायक कंपनियों द्वारा उधार लिए गए ऋणों के लिए प्रत्याभूति प्रदान करना सम्मिलित था। करदाता कंपनी को अपना स्वयं का व्यवसाय संचालित करने में हानि हुई थी, जिसमें उसकी सहायक कंपनियों द्वारा उधार लिए

गए ऋणों के लिए प्रत्याभूति प्रदान करना सम्मिलित था। अतः, जिस वर्ष हानि का निर्धारण किया गया, उस वर्ष में वह कटौती के रूप में अनुज्ञात थी और वर्तमान वाद में प्रत्याभूति संव्यवहार में हुई हानि का निर्धारण केवल परिसमापकों द्वारा अंतिम भुगतान किए जाने के चरण पर ही किया जा सकता था, जो सुसंगत निर्धारण वर्ष में प्राप्त हुआ था। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा उसे यथावत रखा जाना सही था। [1017-ई-जी]

अमलगमेशन्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, (1996) 73 आई.टी.आर. 380 मद्रास — संदर्भित।

3. करदाता कंपनी द्वारा अपनी सहायक कंपनियों के निदेशकों को भुगतान की गई राशियाँ, 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) अथवा 1961 के अधिनियम की धारा 37(1) के अधीन तभी कटौती के रूप में ग्राह्य हो सकती हैं, यदि उन्हें करदाता कंपनी के व्यवसाय के प्रयोजनों के लिए पूर्णतः एवं अनन्यतः व्ययित अथवा विनियोजित व्यय के रूप में माना जा सके। व्यय तथा करदाता के व्यवसाय के मध्य संबंध होना आवश्यक है। सहायक कंपनियों के निदेशकों को प्रबंधकीय पारिश्रमिक के भुगतान में किया गया व्यय, निवेश धारण करने के करदाता कंपनी के व्यवसाय के संचालन में किया गया व्यय नहीं कहा जा सकता। चूँकि सहायक कंपनियाँ, करदाता कंपनी द्वारा दिए गए प्रबंधकीय पारिश्रमिक के कारण अर्जित अपने समस्त लाभ को लाभांश के रूप में वितरित करने के लिए बाध्य नहीं थीं तथा करदाता कंपनी केवल उसी समय और उसी सीमा तक सहायक कंपनी से लाभांश पाने की हकदार थी जब वह घोषित किया जाए, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि किए गए व्यय और करदाता कंपनी के व्यवसाय के मध्य कोई प्रत्यक्ष तथा तात्कालिक संबंध था। अतः, उच्च न्यायालय ने सही रूप से निर्णीत किया कि कटौती अनुज्ञात नहीं की जा सकती थी। [1021-जी-एच; 1023-बी-सी; 1024-ए-बी]

एथर्टन बनाम ब्रिटिश इन्सुलेटेड एण्ड हेल्सबी केबल्स लिमिटेड, (1925) 10 टी.सी. 155 (एच.एल.); ईस्टर्न इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, (1951) आई.टी.आर.

1; आयकर आयुक्त बनाम चंदूलाल केशवलाल एण्ड कम्पनी लिमिटेड, (1960) 38 आई.टी.आर. 601, पर अवलंबन किया गया।

त्रावणकोर टाइटेनियम प्रोडक्ट लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, (1966) 60 आई.टी.आर. 277 तथा इंडियन एल्युमिनियम कम्पनी लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, (1972) 84 आई.टी.आर. 735— संदर्भित।

टाटा सन्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, (1950) 18 आई.टी.आर. 460 तथा जे. आर. पटेल एण्ड सन्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, (1968) 69 आई.टी.आर. 782, विभेदित।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1980 की दीवानी अपील संख्याएँ 139-142 आदि।

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा टी.सी. संख्या 160/69 तथा 1971 की टी.सी. संख्या 239 में दिनांक 23.8.79 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से : के. एन. शुक्ला, टी. ए. रामचन्द्रन, के. बी. राममणि, बी. के. प्रसाद, सी. राधा कृष्ण, अनिल श्रीवास्तव तथा जानकी रामचन्द्रन।

न्यायालय का निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. सी. अग्रवाल द्वारा प्रदान किया गया। ये अपीलें, मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा आयकर अधिनियम, 1922 (जिसे इसमें आगे "1922 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 66(क)(2) तथा आयकर अधिनियम, 1961 (जिसे इसमें आगे "1961 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 261 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 133 के साथ पठित करते हुए प्रदान किए गए उपयुक्तता प्रमाण-पत्र के आधार पर, उक्त उच्च न्यायालय के दिनांक 1 मार्च, 1976 के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित हैं, जो कर वाद संख्या 160/1969 तथा 239/1971 (संदर्भ संख्या 52/1969 तथा 1/1971) में पारित किया गया था। कर वाद संख्या 160/1969, निर्धारण वर्ष 1958-59 से संबंधित था, जिसमें दो प्रश्न आयकर अपीलीय अधिकरण (जिसे इसमें आगे "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा उच्च

न्यायालय की राय हेतु संदर्भित किए गए थे। कर वाद संख्या 239/1971, निर्धारण वर्षों 1958-59 से 1962-63 तक से संबंधित था, जिसमें अधिकरण ने उच्च न्यायालय की राय हेतु छह प्रश्न संदर्भित किए थे। आक्षेपित निर्णय द्वारा, कर वाद संख्या 160/1969 के दोनों प्रश्नों तथा कर वाद संख्या 239/1971 के प्रश्न संख्या 3 को छोड़कर सभी प्रश्नों का उत्तर उच्च न्यायालय द्वारा राजस्व के विरुद्ध तथा करदाता के पक्ष में दिया गया। कर वाद संख्या 239/1971 के प्रश्न संख्या 3 का उत्तर राजस्व के पक्ष में तथा करदाता के विरुद्ध दिया गया। 1980 की दीवानी अपील संख्या 139-142 उन प्रश्नों के संबंध में राजस्व द्वारा दायर की गई हैं जिनका उत्तर राजस्व के विरुद्ध दिया गया था तथा 1980 की दीवानी अपील संख्या 7-11 कर वाद संख्या 239/1971 के प्रश्न संख्या 3 के संबंध में करदाता द्वारा दायर की गई हैं, जिसका उत्तर करदाता के विरुद्ध दिया गया था।

हम सर्वप्रथम राजस्व द्वारा दायर 1980 की दीवानी अपील संख्या 139-142 पर विचार करेंगे। इन अपीलों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, जिनमें एक भाग 1969 के कर वाद संख्या 160 में दो प्रश्नों तथा 1971 के कर वाद संख्या 239 में प्रश्न संख्या 1 एवं 2 के उत्तरों से संबंधित है और दूसरा भाग 1971 के कर वाद संख्या 239 में प्रश्न संख्या 4, 5 एवं 6 के उत्तरों से संबंधित है। 1969 के कर वाद संख्या 160 में दो प्रश्न तथा 1971 के कर वाद संख्या 239 में प्रश्न संख्या 1 एवं 2 निम्नलिखित थे :

1969 का कर वाद संख्या 160

"(1) क्या वाद के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, अधिकरण श्री राम विलास सर्विस (प्राइवेट) लिमिटेड के अंशों के संबंध में 1 जनवरी, 1954 की स्थिति में आयकर अधिकारी द्वारा अपनाए गए मूल्यांकन के आधार को यथावत रखने में सही था?

(2) क्या वाद के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, अधिकरण यह निर्णय करने में सही था कि धारा 12-ख(2) का परंतुक एम/एस सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड को अंशों के विक्रय के संबंध में लागू नहीं होता है?"

1971 का कर वाद संख्या 239

"(1) क्या वाद के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, अधिकरण यह निर्णीत करने में सही था कि धारा 12-ख(2) का परंतुक, करदाता-कंपनी द्वारा एम/एस सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड को, एम/एस सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड के माध्यम से, विभिन्न अंशों के विक्रय के संबंध में लागू नहीं होता है तथा यह कि करदाता 1958-59 के निर्धारण वर्ष में 9,47,541/- रुपये की पूंजीगत हानि का हकदार था?

(2) क्या वाद के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, अधिकरण विधि के अनुसार यह निर्णीत करने में सही था कि धारा 12-ख(2) का द्वितीय परंतुक लागू नहीं होता है तथा करदाता द्वारा अभिलिखित प्रतिफल के पूर्ण मूल्य में परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए?"

ये प्रश्न निम्नलिखित तथ्यों तथा परिस्थितियों से उत्पन्न हुए हैं।

एम/एस अमलगमेशन प्राइवेट लिमिटेड (जिसे इसमें आगे "करदाता-कंपनी" कहा गया है) एक कंपनी है, जिसका निजी लिमिटेड कंपनी के रूप में निगमितकरण 22 दिसंबर, 1938 को हुआ था। करदाता-कंपनी विभिन्न कंपनियों में अंश धारण करती थी, जैसे सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, एडिसन एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, जॉर्ज ओक्स (प्राइवेट) लिमिटेड, एडिसन पेंट्स एण्ड केमिकल्स प्राइवेट लिमिटेड, इंडिया पिस्टन्स प्राइवेट लिमिटेड आदि। सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड की 10/- रुपये मूल्य के 7,50,000 निर्गमित अंशों की पूंजी में से, करदाता-कंपनी के पास सुसंगत समय पर 7,06,933 साधारण अंश थे। सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड की एक सहायक कंपनी थी, जिसका नाम सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड था, जो बाहरी व्यक्तियों को किराया-खरीद संव्यवहारों के माध्यम से वित्तपोषण का व्यवसाय तथा इस समूह की कंपनियों को ऋण एवं अग्रिम प्रदान करने का व्यवसाय करती थी। 1 जुलाई, 1956 की स्थिति में,

करदाता-कंपनी पर सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड की 1,85,16,000/- रुपये की राशि देय थी। कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 295 के अधीन, जो 1 अप्रैल, 1956 से प्रवृत्त हुई, कोई भी कंपनी, इस संबंध में केंद्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त किए बिना, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, ऐसी किसी कंपनी को ऋण नहीं दे सकती थी जो उसकी धारक कंपनी हो। धारा 295 की उपधारा (3) में यह उपबंधित था कि जहाँ ऋणदाता कंपनी द्वारा दिया गया कोई ऋण, जो कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रारंभ के समय बकाया था, ऐसी स्थिति का था कि यदि वह धारा उस समय प्रवृत्त होती तो केंद्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना वह ऋण नहीं दिया जा सकता था, तब ऋणदाता कंपनी को अधिनियम के प्रारंभ से छह माह के भीतर अथवा केंद्रीय सरकार द्वारा उस प्रयोजन के लिए प्रदान की जाने वाली, छह माह से अधिक न होने वाली अतिरिक्त अवधि के भीतर, या तो उस संव्यवहार के लिए केंद्रीय सरकार की स्वीकृति प्राप्त करनी थी अथवा दिए गए ऋण की अदायगी प्रवर्तित करनी थी। करदाता-कंपनी द्वारा सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड के प्रति 1,85,16,000/- रुपये का उक्त दायित्व उपर्युक्त उपबंध से प्रभावित हुआ और इसलिए करदाता-कंपनी के लिए इस दायित्व का परिसमापन करना आवश्यक हो गया। सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड पर सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड की 1,05,21,750/- रुपये की राशि देय थी। करदाता-कंपनी ने अपने द्वारा धारित अंशों के कुछ विक्रय-संव्यवहारों को, दायित्व के परिसमापन के उद्देश्य से, सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड के पक्ष में संपन्न करने हेतु आवश्यक स्वीकृति के लिए भारत सरकार से संपर्क किया। सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड, अपनी ओर से, अपने धारित अंशों का विक्रय करके सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन करती। करदाता-कंपनी तथा सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड, दोनों ने अंशों का विक्रय प्रति अंश एक विनिर्दिष्ट मूल्य पर करने का प्रस्ताव रखा तथा ऐसे विक्रय के लिए केंद्रीय सरकार की स्वीकृति की

मांग की। केंद्रीय सरकार ने विक्रय को स्वीकृति प्रदान करते हुए अपने स्वयं के मूल्य निर्धारित किए तथा यह कहा कि उक्त निर्धारण पूंजीगत लाभ के प्रयोजनों के लिए अंशों के किसी भी मूल्यांकन को प्रभावित किए बिना होगा। तत्पश्चात, विभिन्न कंपनियों में करदाता-कंपनी द्वारा धारित वे अंश, जिनके संबंध में केंद्रीय सरकार द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई थी, कंपनी विधि प्रशासन द्वारा निर्धारित मूल्यों पर, 13 जून, 1957 से प्रभावी होकर, करदाता-कंपनी द्वारा सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड को अंतरित कर दिए गए तथा सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड ने उनमें से एक भाग सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड को विक्रय कर दिया। सिम्पसन एण्ड जनरल फाइनेंस कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड और सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के मध्य हुआ यह संव्यवहार भी उन्हीं मूल्यों पर था।

निर्धारण वर्ष 1958-59 के लिए, जिसका सुसंगत पूर्ववर्ती वर्ष 30 जून, 1957 को समाप्त हुआ था, अपनी आयकर विवरणी प्रस्तुत करते समय, करदाता-कंपनी ने उपर्युक्त संव्यवहारों के संबंध में 4,37,703/- रुपये की पूंजीगत हानि का दावा किया। इस हानि की गणना करते समय, करदाता-कंपनी ने (1) एस.आर.वी.एस. (प्राइवेट) लिमिटेड, (2) एडिसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, (3) जॉर्ज ओक्स (प्राइवेट) लिमिटेड तथा (4) इंडिया पिस्टन्स (प्राइवेट) लिमिटेड के अंशों के संबंध में 1 जनवरी, 1954 की बाजार कीमत को प्रतिस्थापित करने का विकल्प अपनाया। शेष अंशों के संबंध में, करदाता-कंपनी ने लागत मूल्य अपनाया। आयकर अधिकारी ने, निर्धारण करते समय, इस आधार पर कार्यवाही की कि उपर्युक्त अंशों के अंतरण के लिए कंपनी विधि प्रशासन विभाग द्वारा अनुमोदित मूल्य-संरचना तदर्थ आधार पर विशुद्ध एवं साधारण थी तथा उसका उद्देश्य केवल कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 372 के अधीन दी जाने वाली स्वीकृति के सीमित प्रयोजन की पूर्ति करना था और इसलिए जिस मूल्य पर विक्रय हुआ था, उसे अंशों के उचित बाजार मूल्य का प्रतिनिधित्व करने वाला नहीं माना जा सकता था। उसने पूंजीगत लाभ की गणना के प्रयोजन से 1 जनवरी, 1954 की

स्थिति में विखंडन मूल्य को आधार बनाया तथा विक्रय मूल्यों में संशोधन करके शुद्ध पूंजीगत लाभ 6,95,082/- रुपये निर्धारित किया। उसकी गणना के अनुसार भी कुछ पूंजीगत हानियाँ थीं, जिन्हें उसके द्वारा निर्धारित पूंजीगत लाभ के विरुद्ध समायोजित किया गया। एस.आर.वी.एस. (प्राइवेट) लिमिटेड के मामले में, आयकर अधिकारी ने 1 जनवरी, 1954 की स्थिति में विखंडन मूल्य 36,35,350/- रुपये तथा उनका विक्रय मूल्य 21,88,395/- रुपये ग्रहण किया, जिसके परिणामस्वरूप 14,46,955/- रुपये की पूंजीगत हानि हुई।

करदाता-कंपनी ने पूंजीगत लाभ के निर्धारण के विरुद्ध अपीलीय सहायक आयुक्त के समक्ष अपील दायर की। उक्त अपील लंबित रहते हुए, आयकर आयुक्त ने 1922 के अधिनियम की धारा 33-ख के अधीन कार्यवाही प्रारंभ की, क्योंकि उनका मत था कि आयकर अधिकारी का आदेश त्रुटिपूर्ण था तथा राजस्व के हितों के प्रतिकूल था, क्योंकि उसने एस.आर.वी.एस. (प्राइवेट) लिमिटेड के अंशों के विक्रय पर 14,46,955/- रुपये की पूंजीगत हानि को गलत रूप से अनुज्ञात कर दिया था। करदाता-कंपनी के तर्कों पर विचार करने के उपरांत, आयकर आयुक्त ने यह निर्णय किया कि एस.आर.वी.एस. (प्राइवेट) लिमिटेड द्वारा धारित सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के अंशों के मूल्य में हुई वृद्धि को ध्यान में नहीं लिया जाना चाहिए था तथा यदि 1 जनवरी, 1954 की स्थिति में एस.आर.वी.एस. (प्राइवेट) लिमिटेड द्वारा धारित सिम्पसन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के अंशों का मूल्य 24,38,578/- रुपये होता, तो एस.आर.वी.एस. (प्राइवेट) लिमिटेड 31 जुलाई, 1955 को इन अंशों को लागत मूल्य पर हस्तांतरित नहीं करती। आयकर आयुक्त ने आयकर अधिकारी द्वारा अनुज्ञात 14,46,955/- रुपये की पूंजीगत हानि में संशोधन किया तथा यह माना कि 3,91,579/- रुपये का पूंजीगत लाभ निर्धारण हेतु दायित्वग्रस्त था। निर्देश दिया गया कि इस राशि को प्रतिस्थापित किया जाए तथा तदनुसार पूंजीगत लाभ का निर्धारण संशोधित किया गया।

करदाता-कंपनी ने आयकर आयुक्त के उक्त आदेश के विरुद्ध अधिकरण के समक्ष अपील दायर की और यह तर्क किया कि कंपनी विधि प्रशासन द्वारा निर्धारित विक्रय मूल्य अंशों के

सही मूल्य का प्रतिनिधित्व करता था तथा ये संव्यवहार पूंजीगत लाभ के अपवंचन के किसी उद्देश्य के बिना किए गए थे और कंपनी अधिनियम के विभिन्न उपबंधों, जो अंतर-कंपनी ऋणों को निषिद्ध करते थे, के कारण आवश्यक हो गए थे तथा आयकर अधिकारी द्वारा अपनाई गई पद्धति, अर्थात् द्वितीयक मूल्यांकन, उचित थी। उक्त अपील अधिकरण द्वारा अनुज्ञात कर दी गई तथा आयकर आयुक्त का आदेश अपास्त कर दिया गया और आयकर अधिकारी द्वारा अपनाई गई द्वितीयक मूल्यांकन की पद्धति को उचित निर्णीत किया गया। अपीलीय सहायक आयुक्त ने, अधिकरण के आदेश के अनुसरण में, इस तथा अन्य वर्षों की करदाता-कंपनी की अपीलों पर विचार किया और अन्य विचाराधीन अंशों के संबंध में पूंजीगत हानि की गणना की तथा प्रभावतः 4,37,703/- रुपये की पूंजीगत हानि के करदाता-कंपनी के दावे को स्वीकार कर लिया। उक्त आदेश के विरुद्ध करदाता-कंपनी तथा राजस्व, दोनों ने अधिकरण के समक्ष अपीलें दायर कीं। करदाता-कंपनी की अपील 4,37,703/- रुपये की पूंजीगत हानि की गणना से संबंधित थी, जो अपीलीय सहायक आयुक्त के आदेश से उद्धृत थी, जबकि सही राशि 4,90,244/- रुपये होनी चाहिए थी। राजस्व ने विवरणियों में दर्शाई गई 4,37,703/- रुपये की पूंजीगत हानि के संबंध में करदाता-कंपनी के दावे को स्वीकार किए जाने का विरोध किया।

जब यह मामला प्रथम अवसर पर अधिकरण के समक्ष आया, तब उसने वाद को अपीलीय सहायक आयुक्त के पास प्रतिप्रेषित कर दिया तथा इस संबंध में एक विशिष्ट निष्कर्ष मांगा कि क्या विचाराधीन विक्रय कर के अपवंचन अथवा कर दायित्व में कमी करने के उद्देश्य से किए गए थे और यह भी अपेक्षा की कि यदि 1922 के अधिनियम की धारा 12-ख(2) का प्रथम परंतुक लागू माना जाए, तो प्रतिफल के पूर्ण मूल्य की भी गणना की जाए। अपीलीय सहायक आयुक्त ने टिप्पणी की कि यह प्रदर्शित करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध थे कि अंशों का विक्रय एक बाध्य विक्रय था तथा करदाता-कंपनी के पास वैधानिक उपबंधों का अनुपालन करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था और प्रस्तुत साक्ष्य स्पष्ट रूप से करदाता-

कंपनी के इस तर्क को स्थापित करते थे कि विक्रय पूंजीगत लाभ के अपवंचन की किसी इच्छा से प्रेरित नहीं था तथा राजस्व किसी निर्णायक साक्ष्य द्वारा यह सिद्ध नहीं कर सका था कि संव्यवहार के पीछे निहित उद्देश्य पूंजीगत लाभ कर के दायित्व का अपवंचन अथवा उसमें कमी करना था। उन्होंने संपत्ति-कर अधिनियम के अधीन निर्मित नियमों के अनुसार आंकड़ों की गणना की तथा पाया कि कंपनी विधि प्रशासन द्वारा निर्धारित मूल्य, उनके द्वारा निकाले गए आंकड़ों से बहुत अधिक भिन्न नहीं थे। अपीलीय सहायक आयुक्त की प्रतिवेदन प्राप्त होने के उपरांत, अधिकरण ने पुनः मामले पर विचार किया और निर्णीत किया कि 1922 के अधिनियम की धारा 12-ख के परंतुक का वर्तमान वाद में आह्वान नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस दृष्टिकोण के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं था कि विक्रय धारा 12-ख के उपबंधों से बचने के उद्देश्य से किए गए थे। अधिकरण ने करदाता-कंपनी के तर्क को स्वीकार किया तथा निर्णीत किया कि राजस्व, पूंजीगत लाभ की गणना करने तथा भारत सरकार द्वारा निर्धारित आंकड़ों में हस्तक्षेप करने में न्यायोचित नहीं था। 1969 के कर वाद संख्या 160 में संदर्भित दोनों प्रश्न 1922 के अधिनियम की धारा 33-ख के अधीन कार्यवाही से उत्पन्न हुए हैं, जबकि 1971 के कर वाद संख्या 239 में संदर्भित प्रश्न संख्या 1 एवं 2, निर्धारण वर्ष 1958-59 के संबंध में अपीलीय सहायक आयुक्त के आदेश के विरुद्ध दायर अपील में अधिकरण द्वारा पारित आदेश से उत्पन्न हुए हैं।

चूँकि 1969 के कर वाद संख्या 160 में दूसरा प्रश्न तथा 1971 के कर वाद संख्या 239 में प्रश्न संख्या 1 एवं 2 कमोबेश एक ही मुद्दा उठाते थे, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा उन पर एक साथ विचार किया गया। धारा 12-ख(2) के उपबंधों और विशेष रूप से उक्त उपधारा के प्रथम परंतुक का उल्लेख करने के उपरांत, उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि उक्त परंतुक के लागू होने की प्रथम अपेक्षा, अर्थात् जिस व्यक्ति को विक्रय किया गया है वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसके साथ करदाता प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हो, वर्तमान वाद में पूर्ण हो गई थी, क्योंकि सहायक कंपनी की सहायक कंपनी को अंशों का विक्रय ऐसे व्यक्ति

को किया गया विक्रय है जिसके साथ करदाता-कंपनी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध है। परंतुक की दूसरी अपेक्षा के संबंध में, अर्थात् क्या विक्रय उस धारा के अधीन करदाता-कंपनी के दायित्व के अपवंचन अथवा उसमें कमी करने के उद्देश्य से किया गया था, उच्च न्यायालय ने इंगित किया कि आयकर अधिकारी ने यह निष्कर्ष नहीं दिया था कि जिस उद्देश्य से संव्यवहार संपन्न किया गया था वह पूंजीगत लाभ कर के दायित्व के अपवंचन अथवा उसमें कमी करना था और उसके आदेश में की गई एकमात्र टिप्पणी यह थी कि पूंजीगत लाभ के दायित्व में कमी हुई थी। उच्च न्यायालय के अनुसार, परिणाम को ही उद्देश्य मान लेने वाला ऐसा निष्कर्ष 1922 के अधिनियम की धारा 12-ख(2) के प्रथम परंतुक की अपेक्षा को पूर्ण नहीं करता। उच्च न्यायालय का मत था कि अधिकरण ने इस बिंदु पर विशेष रूप से अपीलीय सहायक आयुक्त से निष्कर्ष मंगाकर सही किया था। अपीलीय सहायक आयुक्त द्वारा अभिलिखित उस निष्कर्ष का उल्लेख करने के उपरांत, जिसे अधिकरण द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, कि संव्यवहार का उद्देश्य पूंजीगत लाभ कर के दायित्व का अपवंचन अथवा उसमें कमी करना नहीं था, कि विक्रय एक बाध्य विक्रय था क्योंकि करदाता-कंपनी के पास कोई विकल्प नहीं था तथा कि मूल्य कंपनी विधि प्रशासन द्वारा निर्धारित किए गए थे, उच्च न्यायालय ने धारित किया कि धारा 12-ख(2) के प्रथम परंतुक को वर्तमान वाद में लागू नहीं किया जा सकता। उच्च न्यायालय ने राजस्व की ओर से प्रस्तुत इस तर्क को स्वीकार नहीं किया कि विक्रय मूल्य कंपनी विधि प्रशासन द्वारा तदर्थ आधार पर निर्धारित किया गया था और इस संदर्भ में उसने टिप्पणी की कि 18 मई, 1957 का पत्र (अपीलीय सहायक आयुक्त के प्रतिप्रेषण प्रतिवेदन का परिशिष्ट जी.वी.आई.आई.ए.) स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कंपनी विधि प्रशासन ने केंद्रीय राजस्व बोर्ड से परामर्श करके आंकड़ों का निर्धारण किया था और जब करदाता-कंपनी ने उन मूल्यों पर अंशों का विक्रय किया, तब यह वैध रूप से तर्क नहीं किया जा सकता था कि करदाता-कंपनी ने पूंजीगत लाभ के दायित्व के अपवंचन अथवा उसमें कमी करने के उद्देश्य से अंशों का अंतरण किया

था। इस दृष्टिकोण के आधार पर उच्च न्यायालय ने 1969 के कर वाद संख्या 160 के दूसरे प्रश्न तथा 1971 के कर वाद संख्या 239 के दूसरे प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप में तथा राजस्व के विरुद्ध दिया।

1969 के कर वाद संख्या 160 में प्रथम प्रश्न, जो मूल्यांकन का प्रश्न उठाता है, के संबंध में उच्च न्यायालय का मत था कि दूसरे प्रश्न के संबंध में उसके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के आधार पर वह प्रश्न विचारार्थ शेष नहीं रहता, क्योंकि मूल्यांकन का प्रश्न तभी सुसंगत होता जब परंतुक लागू होता। तथापि, उच्च न्यायालय ने उक्त प्रश्न पर भी विचार किया तथा उस प्रश्न का उत्तर भी इंगित किया। उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह पर्याप्त अंशधारण का मामला है तथा आयकर अधिकारी द्वारा अपनाई गई पद्धति के समर्थन में पाठगत आधार उपलब्ध है और आयकर आयुक्त ने बिना किसी वैध कारण के उसमें त्रुटि निकाली थी। इसलिए उच्च न्यायालय ने 1969 के कर वाद संख्या 160 के प्रथम प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप में तथा करदाता-कंपनी के पक्ष में दिया।

1971 के कर वाद संख्या 239 में प्रथम प्रश्न के संबंध में उच्च न्यायालय का मत था कि 1969 के कर वाद संख्या 160 के दूसरे प्रश्न के संबंध में दिए गए उत्तर को देखते हुए उस पर पृथक रूप से विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वह उत्तर उस प्रश्न का भी समाधान कर देता था। इसलिए, उस प्रश्न का उत्तर भी सकारात्मक रूप में तथा करदाता-कंपनी के पक्ष में दिया गया।

हमने इन प्रश्नों के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उत्तरों के विरुद्ध दायर अपीलों के समर्थन में राजस्व की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री के. एन. शुक्ला को सुना। विद्वान वरीय अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करने के उपरांत, हमारा मत है कि उच्च न्यायालय ने 1922 के अधिनियम की धारा 12-ख(2) के परंतुक में निहित उपबंधों का यथोचित निर्वचन किया है और अपीलीय सहायक आयुक्त द्वारा अभिलिखित उस निष्कर्ष को, जिसे अधिकरण द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, कि संव्यवहार का उद्देश्य पूंजीगत लाभ

के दायित्व का अपवंचन अथवा उसमें कमी करना नहीं था, दृष्टिगत रखते हुए, उक्त परंतुक लागू नहीं होता था। हमारे मत में, उच्च न्यायालय का उक्त निष्कर्ष किसी विधिक त्रुटि से ग्रस्त नहीं है और वाद के इस पहलू पर उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।

अब हम 1971 के कर वाद संख्या 239 में प्रश्न संख्या 4, 5 एवं 6 के संबंध में राजस्व की अपीलों पर विचार कर सकते हैं।

उक्त प्रश्न निम्नलिखित थे :

"(4) क्या वाद के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, अपीलीय अधिकरण विधि के अनुसार यह निर्णीत करने में सही था कि स्वैच्छिक परिसमापन में गई सेम्बियम सॉ मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड के लिए प्रत्याभूति पर खड़े होने के कारण करदाता को हुई हानि, परिसमापकों से वर्ष 1959-60 से 1962-63 के दौरान प्राप्त राशियों को ध्यान में रखने के उपरांत, निर्धारण वर्ष 1962-63 में अनुज्ञात की जानी चाहिए?"

"(5) क्या वाद के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, अधिकरण विधि के अनुसार सेम्बियम सॉ मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड (स्वैच्छिक परिसमापन में) के परिसमापकों से प्राप्त 1,41,000/- रुपये, 2,29,627/- रुपये, 1,10,500/- रुपये तथा 4,381/- रुपये की राशियों को क्रमशः निर्धारण वर्ष 1959-60, 1960-61, 1961-62 तथा 1962-63 के निर्धारणों से विलोपित करने में सही था?"

"(6) क्या वाद के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, अपीलीय अधिकरण विधि के अनुसार यह निर्णीत करने में सही था कि सेम्बियम सॉ मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड (स्वैच्छिक परिसमापन में) के लिए प्रत्याभूति पर खड़े होने के कारण करदाता को हुई वास्तविक हानि का प्रतिनिधित्व करने वाली 4,23,256/- रुपये की राशि, निर्धारण वर्ष 1962-63 में अनुज्ञात की जानी चाहिए?"

सेम्बियम साँ मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड (संक्षेप में 'एस.एस.एम.')

नामक एक कंपनी थी, जो मूलतः एडिसन एण्ड कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड की सहायक कंपनी थी। 1 फरवरी, 1954 से करदाता-कंपनी ने एम/एस एडिसन एण्ड कम्पनी (प्राइवेट) लिमिटेड से एस.एस.एम. के सभी अंश क्रय कर लिए और इस प्रकार एस.एस.एम. करदाता-कंपनी की प्रत्यक्ष सहायक कंपनी बन गई। एस.एस.एम. ने नेशनल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड से ऋण लिया था और करदाता-कंपनी ने उक्त बैंक के समक्ष उक्त कंपनी के ऋण के लिए प्रत्याभूति दी थी। एस.एस.एम. वर्ष 1955 में किसी समय परिसमापन में चली गई। अधिविकर्ष सुविधा के प्रयोजन से, एस.एस.एम. ने करदाता-कंपनी के पक्ष में एक वचन-पत्र निष्पादित किया था, जिसे करदाता-कंपनी ने बैंक के पक्ष में पृथक प्रत्याभूति-पत्र के साथ बैंक के पक्ष में पृष्ठांकित कर दिया था। जब एस.एस.एम. परिसमापन में चली गई, तब करदाता-कंपनी को प्रत्याभूतिदाता के रूप में प्रत्याभूति की शर्तों के अनुसार उक्त अधिविकर्षों का भुगतान करना पड़ा। परिसमापकों से वसूल की गई राशि का समायोजन करने के उपरांत, उक्त अधिविकर्ष के संबंध में परिसमापनाधीन कंपनी से करदाता-कंपनी को देय राशि 9,08,764/- रुपये थी। करदाता-कंपनी ने इस राशि को निर्धारण वर्ष 1958-59 के निर्धारण में ऐसी हानि के रूप में दावा किया, जो उसके व्यवसाय के अनुक्रम में तथा उससे आनुषंगिक रूप से उत्पन्न हुई थी। बाद के वर्षों में एस.एस.एम. के परिसमापन की प्रक्रिया के दौरान करदाता-कंपनी को कुछ राशियाँ प्राप्त हुई थीं। कुल प्राप्त राशि 4,85,508.28 रुपये थी, जो निर्धारण वर्ष 1959-60 से 1962-63 तक के सुसंगत लेखा-वर्षों में प्राप्त हुई थी। करदाता-कंपनी ने अपने संघ ज्ञापन में निहित उस खंड पर अवलंबन किया, जो उसे ऋणों के लिए प्रत्याभूतिदाता बनने के लिए अधिकृत करता था, और यह तर्क किया कि विचाराधीन संव्यवहार सामान्य व्यावसायिक संव्यवहारों से उत्पन्न हुए थे और इसलिए यह हानि निर्धारण वर्ष 1958-59 में अनुज्ञात कटौती थी। आयकर अधिकारी ने धारित किया कि विचाराधीन हानि करदाता-कंपनी के व्यवसाय के अनुक्रम में अथवा उससे आनुषंगिक रूप से उत्पन्न नहीं हुई थी और उसके मत

में यह अधिकतम एक पूंजीगत हानि थी, जो 1922 के अधिनियम की धारा 12-ख के क्षेत्राधिकार में नहीं आती थी। निर्धारण वर्ष 1959-60 से 1962-63 तक के निर्धारण करते समय, आयकर अधिकारी ने परिसमापक से प्राप्त राशियों को एहतियाती उपाय के रूप में आय माना। अपील में, अपीलीय सहायक आयुक्त ने निर्धारण वर्ष 1958-59 में हानि को अनुज्ञात करने के करदाता-कंपनी के दावे को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उनका मत था कि यह ऐसी हानि नहीं थी जो उसके व्यवसाय के अनुक्रम में उत्पन्न हुई हो अथवा उससे आनुषंगिक रही हो। किन्तु, निर्धारण वर्ष 1959-60 से 1962-63 तक की अपीलें उस सीमा तक अनुज्ञात कर दी गईं, जहाँ तक वे संबंधित वर्षों में परिसमापक से प्राप्त राशियों के प्रश्न से संबंधित थीं। चूँकि प्रत्याभूति-जनित हानि को निर्धारण वर्ष 1958-59 में कटौती के रूप में अनुज्ञात नहीं किया गया था, इसलिए अपीलीय सहायक आयुक्त ने धारित किया कि परवर्ती वसूली राशियों को बाद के वर्षों की कुल आय में सम्मिलित नहीं किया जा सकता था। करदाता-कंपनी तथा राजस्व, दोनों ने अपीलीय सहायक आयुक्त के उक्त आदेश के विरुद्ध अधिकरण के समक्ष अपीलें दायर कीं। अधिकरण ने धारित किया कि करदाता-कंपनी ने अपने स्वयं के व्यवसाय के संचालन के अनुक्रम में ऋण के लिए प्रत्याभूति दी थी और यह हानि स्पष्ट रूप से कटौती के रूप में ग्राह्य थी। किन्तु, चूँकि करदाता-कंपनी को परिसमापक से अंतिम भुगतान निर्धारण वर्ष 1962-63 से सुसंगत पूर्ववर्ती वर्ष में प्राप्त हुआ था, इसलिए यह धारित किया गया कि वसूली न की जा सकी शेष 4,23,256/- रुपये की राशि वास्तविक व्यवसाय हानि का प्रतिनिधित्व करती है, जो निर्धारण वर्ष 1962-63 के लिए अनुज्ञात की जा सकती थी। राजस्व के आग्रह पर, अधिकरण ने उपर्युक्त प्रश्न संख्या 4, 5 एवं 6 को उच्च न्यायालय की राय हेतु संदर्भित किया।

उक्त प्रश्नों पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि वास्तविक विवादास्पद बिंदु यह था कि क्या करदाता-कंपनी की सहायक कंपनी एस.एस.एम. को दिए गए ऋण के संबंध में बैंक के पक्ष में निष्पादित प्रत्याभूति, करदाता-कंपनी के स्वयं के

व्यवसाय के अनुक्रम में दी गई थी। उच्च न्यायालय ने *अमलगमेशन्स प्रा. लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त*, (1969) 73 आई.टी.आर. 380 में दिए गए अपने पूर्व निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें करदाता-कंपनी के व्यवसाय की प्रकृति पर विचार किया गया था और यह धारित किया गया था कि 1922 के अधिनियम की धारा 23-क के उपबंध करदाता-कंपनी पर लागू होते हैं, क्योंकि करदाता-कंपनी के व्यवसाय में उसकी सहायक कंपनियों द्वारा लिए गए ऋणों के लिए प्रत्याभूति प्रदान करना सम्मिलित है। उच्च न्यायालय ने धारित किया कि उक्त वाद में दिया गया निष्कर्ष उसके समक्ष विचाराधीन प्रश्नों पर स्पष्ट रूप से लागू होता है तथा करदाता-कंपनी को अपने स्वयं के व्यवसाय के संचालन में हानि हुई थी, जिसके अंतर्गत उसकी सहायक कंपनियों द्वारा लिए गए ऋणों के लिए प्रत्याभूति प्रदान करना सम्मिलित था। उच्च न्यायालय के अनुसार, हानि उस वर्ष में कटौती के रूप में अनुज्ञात थी, जिस वर्ष उसका निर्धारण किया गया था और वर्तमान वाद में उच्च न्यायालय ने धारित किया कि करदाता-कंपनी यह निर्धारित केवल परिसमापकों द्वारा अंतिम भुगतान किए जाने के चरण पर ही कर सकती थी कि प्रत्याभूति संव्यवहार में कोई हानि हुई थी या नहीं, और वह अंतिम भुगतान निर्धारण वर्ष 1962-63 से सुसंगत पूर्ववर्ती वर्ष में प्राप्त हुआ था तथा उस वर्ष में उसे अनुज्ञात करने में अधिकरण सही था। इसलिए उच्च न्यायालय ने प्रश्न संख्या 4, 5 एवं 6 का उत्तर सकारात्मक रूप में तथा राजस्व के विरुद्ध दिया।

इन प्रश्नों के संबंध में राजस्व द्वारा दायर अपीलों पर श्री शुक्ला को सुनने के उपरांत, हम यह धारित करने में असमर्थ हैं कि इन प्रश्नों के संबंध में उच्च न्यायालय का निर्णय किसी विधिक त्रुटि से ग्रस्त है। अतः, हम उच्च न्यायालय द्वारा उसके समक्ष संदर्भित प्रश्न संख्या 4, 5 एवं 6 के संबंध में दिए गए उत्तर की पुष्टि करते हैं। परिस्थितियों में, यह धारित किया जाना चाहिए कि राजस्व द्वारा दायर 1980 की दीवानी अपील संख्या 139-142 निरस्त किए जाने योग्य हैं।

अब हम 1971 के कर वाद संख्या 239 में प्रश्न संख्या 3 के संबंध में करदाता-कंपनी द्वारा दायर 1980 की दीवानी अपील संख्या 7-11 पर विचार करेंगे, जो निम्नलिखित था :

"(3) क्या वाद के तथ्यों तथा परिस्थितियों में, अपीलीय अधिकरण विधि के अनुसार यह निर्णीत करने में सही था कि 4,37,066/- रुपये, 90,896/- रुपये, 1,08,978/- रुपये, 1,18,102/- रुपये तथा 1,11,740/- रुपये की राशियाँ क्रमशः निर्धारण वर्ष 1958-59 से 1962-63 तक के लिए करदाता के निर्धारणों में कटौती के रूप में ग्राह्य हैं?"

करदाता-कंपनी अनेक कंपनियों में बड़ी मात्रा में अंशधारक थी तथा सुसंगत वर्ष में ऐसी सोलह कंपनियाँ थीं। करदाता-कंपनी (1) एक वित्त समिति; (2) दिल्ली में एक संपर्क कार्यालय; (3) एक निर्यात संवर्धन विभाग; तथा (4) एक आंतरिक लेखा-परीक्षा विभाग के माध्यम से अपनी सहायक कंपनियों को कुछ सामान्य सेवाएँ प्रदान कर रही थी। दिल्ली स्थित संपर्क कार्यालय तथा निर्यात संवर्धन एवं आंतरिक लेखा-परीक्षा विभागों के अनुरक्षण पर होने वाला व्यय करदाता-कंपनी द्वारा वहन किया जाता था और उसकी वसूली सहायक कंपनियों से की जाती थी। वित्त समिति विभिन्न सहायक कंपनियों को उनके व्यवसाय के अधिक दक्ष संचालन में सहायता प्रदान करने हेतु परामर्शदात्री क्षमता में कार्य कर रही थी। 500/- रुपये से अधिक मूल्य के प्रत्येक पूंजीगत उपकरण के क्रय तथा 2,500/- रुपये से अधिक मूल्य के कच्चे माल के क्रय से संबंधित सभी क्रय-अधियाचनाएँ अनुमोदन हेतु वित्त समिति के समक्ष प्रस्तुत की जाती थीं। ऐसे नियंत्रण का उद्देश्य प्रत्येक कंपनी के हित में कंपनी की निधियों का विवेकपूर्ण उपयोग सुनिश्चित करना था। ऐसी स्वीकृति प्रदान किए जाने अथवा अस्वीकार किए जाने से पूर्व विभिन्न आंकड़े एकत्र किए जाते थे। तकनीकी विषयों अथवा प्रबंधन से संबंधित अन्य विषयों को भी वित्त समिति के उन सदस्यों के पास संदर्भित किया जाता था, जो अपने-अपने क्षेत्रों में अनुभवी थे। वित्त समिति प्रतिदिन प्रत्येक कंपनी की वित्तीय स्थिति का परीक्षण करती थी। करदाता-कंपनी के निदेशक, सहायक

कंपनियों में भी निदेशक/प्रबंधक थे। उनके तथा संबंधित सहायक कंपनी के मध्य संपादित सेवा अनुबंधों के अनुसार, वे पारिश्रमिक के भुगतान तथा लाभ के एक निश्चित प्रतिशत के रूप में कमीशन प्राप्त करने के हकदार थे। ऐसे ही सेवा अनुबंध सहायक कंपनियों के अन्य निदेशकों द्वारा भी संपादित किए गए थे, जो करदाता-कंपनी के निदेशक नहीं थे। कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 198 के उपबंधों के कारण, जो कंपनी के शुद्ध लाभ के 11% पर कुल प्रबंधकीय पारिश्रमिक की अधिकतम सीमा निर्धारित करते थे, सहायक कंपनियों के लिए संबंधित व्यक्तियों को अनुबंधित पारिश्रमिक का भुगतान करना संभव नहीं था। 4 अप्रैल, 1959 को करदाता-कंपनी के निदेशक मंडल ने एक संकल्प पारित किया, जिसके द्वारा यह संकल्पित किया गया कि सहायक कंपनियों के नौ निदेशकों को देय पारिश्रमिक का भुगतान उन्हें उनके द्वारा पृथक-पृथक संपादित अनुबंधों की शर्तों के अनुसार पूर्ण रूप से किया जाएगा तथा कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन अनुज्ञात अधिकतम राशि से अधिक की राशि का वहन करदाता-कंपनी करेगी। इन नौ निदेशकों में से तीन करदाता-कंपनी के निदेशक थे और इन तीन निदेशकों में से दो वित्त समिति के सदस्य थे। सहायक कंपनियों के शेष छह निदेशकों में से कोई भी वित्त समिति का सदस्य नहीं था। उक्त संकल्प के अनुसार करदाता-कंपनी ने उक्त निदेशकों को विभिन्न राशियों का भुगतान किया। विभिन्न वर्षों के लिए विभिन्न व्यक्तियों को इस प्रकार भुगतान की गई कुल राशियों का उल्लेख प्रश्न संख्या 3 में किया गया है। करदाता-कंपनी ने उक्त राशियों को निर्धारण वर्ष 1958-59 से 1961-62 तक के लिए 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) के अधीन तथा निर्धारण वर्ष 1962-63 के लिए 1961 के अधिनियम की धारा 37 के अधीन कटौती के रूप में दावा किया। आयकर अधिकारी के समक्ष यह विवादित नहीं था कि ये भुगतान संबंधित व्यक्तियों द्वारा विभिन्न सहायक कंपनियों, जिनमें वे निदेशक/प्रबंधक थे, को प्रदान की गई सेवाओं के संबंध में थे तथा भुगतान का कोई भी भाग उनके द्वारा सीधे करदाता-कंपनी को प्रदान की गई किसी सेवा से संबंधित नहीं था। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि सेवाएँ उनके द्वारा अन्य

कंपनियों को प्रदान की गई थीं, तथापि धारक कंपनी और उसकी सहायक कंपनियों के मध्य संबंध को दृष्टिगत रखते हुए यह माना जाना चाहिए कि उन्होंने सेवाएँ करदाता-कंपनी को प्रदान की थीं। आयकर अधिकारी ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया तथा धारित किया कि कंपनी अधिनियम की धारा 198 के अधीन अनुज्ञात राशि से अधिक का पारिश्रमिक, जिसका वहन संबंधित कंपनियों द्वारा नहीं किया गया था, करदाता-कंपनी के व्यवसाय के प्रयोजन हेतु पूर्णतः तथा अनन्यतः किए गए व्यय के रूप में 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) तथा 1961 के अधिनियम की धारा 37 के अधीन कटौती के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता था। यह भी विशेष रूप से इंगित किया गया कि करदाता-कंपनी के निदेशक मंडल का संकल्प 4 अप्रैल, 1959 को पारित किया गया था, जो निर्धारण वर्ष 1958-59 तथा 1959-60 से सुसंगत पूर्ववर्ती वर्षों के पश्चात् था। अपील में, अपीलीय सहायक आयुक्त ने भी वही दृष्टिकोण अपनाया। अधिकरण द्वारा वाद को प्रतिप्रेषित करते हुए, प्रतिप्रेषण आदेश में उल्लिखित बिंदुओं पर विचार कर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु अपीलीय सहायक आयुक्त के पास भेजा गया। अपीलीय सहायक आयुक्त ने अतिरिक्त साक्ष्य ग्रहण करने के उपरांत अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने प्रतिवेदित किया कि उन व्यक्तियों को भुगतान किए गए पारिश्रमिक के संबंध में कटौती अनुज्ञात की जा सकती है, जो करदाता-कंपनी के निदेशक थे तथा वित्त समिति के सदस्य भी थे, किन्तु उन व्यक्तियों के संबंध में, जो केवल सहायक कंपनियों के निदेशक एवं कर्मचारी थे, परंतु न तो करदाता-कंपनी के निदेशक थे और न ही वित्त समिति के सदस्य, करदाता-कंपनी द्वारा भुगतान किए गए पारिश्रमिक के संबंध में ऐसी कटौती अनुज्ञात नहीं की जा सकती थी। अधिकरण का मत था कि करदाता-कंपनी के अनेक सहायक कंपनियों में अंश धारण करने के व्यवसाय की प्रकृति तथा लाभांश अर्जित करने के उद्देश्य से उन कंपनियों के हितों एवं कल्याण की देखरेख करने के तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए, करदाता-कंपनी द्वारा भुगतान किए गए पारिश्रमिक से संबंधित समस्त व्यय कटौती के रूप में ग्राह्य था।

राजस्व की ओर से प्रस्तुत इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कि करदाता-कंपनी कोई व्यवसाय संचालित नहीं कर रही थी, क्योंकि मात्र निवेश धारण करना व्यवसाय का गठन नहीं करता, उच्च न्यायालय ने धारित किया कि 1922 के अधिनियम की धारा 23-क को दृष्टिगत रखते हुए, उपयुक्त मामलों में निवेश धारण करना भी उतना ही व्यवसाय हो सकता है जितना कि उनका क्रय-विक्रय करना, और जो अपेक्षित है वह यह कि लाभ अर्जित करने के निश्चित उद्देश्य से गतिविधि अथवा आचरण का वास्तविक, पर्याप्त तथा व्यवस्थित अथवा संगठित क्रम होना चाहिए, जो व्यवसाय की कसौटी है। उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि करदाता-कंपनी किसी एक कंपनी में मात्र निवेशक नहीं है, बल्कि उसकी सोलह कंपनियों में निवेश हैं और उसने इन कंपनियों के व्यवसाय में सक्रिय रुचि ली थी, जैसा कि निर्यात संवर्धन, दिल्ली स्थित संपर्क कार्यालय तथा आंतरिक लेखा-परीक्षा के रूप में प्रदान की गई सेवाओं से स्पष्ट है, और वह प्रत्येक कंपनी की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं के संबंध में प्रतिदिन बैठक करने वाले अपने निदेशकों के माध्यम से वित्त संबंधी परामर्श भी प्रदान करती थी, तथा यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें करदाता-कंपनी ने स्वयं को केवल निवेश करने और लाभांश की प्रतीक्षा करने तक सीमित रखा हो। इसलिए उच्च न्यायालय ने धारित किया कि निवेश धारण करने के मामले में एक व्यावसायिक गतिविधि विद्यमान थी। इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या किया गया व्यय करदाता-कंपनी के व्यवसाय के प्रयोजन के लिए पूर्णतः तथा अनन्यतः व्ययित किया गया था, उच्च न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि उक्त प्रश्न पूर्णतः तथ्यात्मक है, क्योंकि कटौतीयोग्य होने के लिए व्यय को दो कसौटियों को संतुष्ट करना आवश्यक है : (1) व्यय करदाता द्वारा व्यापारी के रूप में अपनी हैसियत में किया गया हो; तथा (2) वह उसके व्यवसाय के संचालन से आनुषंगिक हो। उच्च न्यायालय का मत था कि व्यय तथा करदाता के व्यवसाय के मध्य संबंध होना आवश्यक है। इन कसौटियों को लागू करते हुए, उच्च न्यायालय ने धारित किया कि वर्तमान वाद में भुगतान का उद्देश्य केवल सहायक कंपनी को उस असुविधाजनक स्थिति से बाहर निकालना

था, जिसमें वह अपने निदेशक को देय पारिश्रमिक पर प्रतिबंध लगाने वाले वैधानिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप पहुँच गई थी, और यह कि उक्त व्यय करदाता-कंपनी के व्यवसाय के लिए पूर्णतः तथा अनन्यतः व्ययित नहीं किया गया था तथा इसलिए उसे कटौती के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता था। करदाता-कंपनी की ओर से प्रस्तुत वैकल्पिक दावा कि कम-से-कम करदाता-कंपनी द्वारा अपने उन निदेशकों को, जो वित्त समिति के सदस्य भी थे, पारिश्रमिक देने में किया गया व्यय कटौती के रूप में अनुज्ञात किया जाना चाहिए, क्योंकि अपनी सहायक कंपनियों को सेवाएँ प्रदान करने में उक्त व्यय तथा करदाता-कंपनी के व्यवसाय के मध्य संबंध विद्यमान था, उच्च न्यायालय द्वारा इस कारण स्वीकार नहीं किया गया कि करदाता-कंपनी द्वारा पारित संकल्प में यह नहीं कहा गया था कि व्यय अपने निदेशकों को उस सीमा तक पारिश्रमिक देने के प्रयोजन से किया गया था, जिस सीमा तक उन्होंने वित्त समिति के सदस्य के रूप में सेवाएँ प्रदान की थीं। उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि उक्त संकल्प ने निदेशकों के साथ, चाहे वे वित्त समिति के सदस्य हों अथवा नहीं, एक वर्ग के रूप में व्यवहार किया था और उन सभी के संबंध में करदाता-कंपनी ने व्यय केवल इसलिए वहन किया था क्योंकि सहायक कंपनियाँ उन्हें उस सीमा तक पारिश्रमिक प्रदान नहीं कर सकती थीं तथा यह तथ्य कि वे करदाता-कंपनी के निदेशक थे और वित्त समिति के सदस्य थे, उनके लिए देय पारिश्रमिक का वहन करते समय ध्यान में नहीं रखा गया था। इसलिए, प्रश्न संख्या 3 का उत्तर नकारात्मक रूप में तथा करदाता-कंपनी के विरुद्ध दिया गया।

करदाता-कंपनी द्वारा अपनी सहायक कंपनियों के निदेशकों को भुगतान की गई राशियाँ, 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) अथवा 1961 के अधिनियम की धारा 37(1) के अधीन तभी कटौती के रूप में ग्राह्य हो सकती हैं, यदि उन्हें करदाता-कंपनी के व्यवसाय के प्रयोजनों के लिए "पूर्णतः तथा अनन्यतः व्ययित अथवा विनियोजित" व्यय माना जा सके। इस अभिव्यक्ति का प्रयोग यूनाइटेड किंगडम के आयकर अधिनियम, 1918 में

भी किया गया था। *एथर्टन बनाम ब्रिटिश इन्सुलेटेड एण्ड हेल्सबी केबल्स लिमिटेड*, (1925) 10 टी.सी. 155 (एच.एल.) में, विस्काउंट केव, एल.सी. ने उक्त अभिव्यक्ति की निम्न प्रकार व्याख्या की :

"..... ऐसी धनराशि जो आवश्यकता के कारण नहीं, तथा व्यापार को प्रत्यक्ष और तात्कालिक लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि वाणिज्यिक औचित्य के आधार पर स्वेच्छा से तथा व्यवसाय के संचालन को अप्रत्यक्ष रूप से सुगम बनाने के लिए व्यय की गई हो, तब भी उसे व्यापार के प्रयोजनों के लिए पूर्णतः तथा अनन्यतः व्ययित माना जा सकता है।"

इन टिप्पणियों का इस न्यायालय द्वारा 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) का निर्वचन करते समय अनुमोदनपूर्वक उल्लेख किया गया है। देखिए : *ईस्टर्न इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त*, (1951) 20 आई.टी.आर. 1 तथा *आयकर आयुक्त बनाम चंदूलाल केशवलाल एण्ड कम्पनी*, (1960) 38 आई.टी.आर. 601।

त्रावणकोर टाइटेनियम प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, केरल, (1966) 60 आई.टी.आर. 227 में, इस न्यायालय ने 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "व्यवसाय के प्रयोजन के लिए" का निर्वचन करते हुए कहा :

"व्यय व्यवसाय से आनुषंगिक होना चाहिए तथा वाणिज्यिक औचित्य द्वारा आवश्यक अथवा न्यायसंगत ठहराया गया होना चाहिए। उसका व्यवसाय से प्रत्यक्ष तथा घनिष्ठ संबंध होना चाहिए तथा वह करदाता द्वारा व्यापारी के रूप में अपनी हैसियत में व्ययित किया गया होना चाहिए। कटौती ग्राह्य होने के लिए, व्यय और व्यवसाय के मध्य अर्थात् व्यय और करदाता के व्यापारी के रूप में चरित्र के मध्य, न कि परिसंपत्तियों के स्वामी के रूप में, प्रत्यक्ष तथा घनिष्ठ संबंध होना चाहिए, भले ही वे परिसंपत्तियाँ व्यवसाय की परिसंपत्तियाँ हों।"

उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निर्णीत *इंडियन एल्युमिनियम कम्पनी लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त*, (1972) 84 आई.टी.आर. 735 में, *त्रावणकोर टाइटेनियम प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, केरल (उपरोक्त)* में प्रतिपादित उपर्युक्त कसौटी को निम्न शब्दों में परिसीमित किया गया था :

"हमारे मत में, इस न्यायालय द्वारा त्रावणकोर टाइटेनियम वाद में अपनाई गई यह कसौटी कि 'कटौती ग्राह्य होने के लिए, व्यय और व्यवसाय के मध्य अर्थात् व्यय और करदाता के व्यापारी के रूप में चरित्र के मध्य, न कि परिसंपत्तियों के स्वामी के रूप में, प्रत्यक्ष तथा घनिष्ठ संबंध होना चाहिए, भले ही वे परिसंपत्तियाँ व्यवसाय की परिसंपत्तियाँ हों', इस कथन द्वारा परिसीमित किए जाने की आवश्यकता है कि यदि व्यय करदाता द्वारा स्वामी-सह-व्यापारी के रूप में किया गया है और वह व्यय वास्तव में उसके व्यवसाय के संचालन से आनुषंगिक है, तो उसे उसके द्वारा व्यापारी के रूप में तथा उसके व्यवसाय से आनुषंगिक रूप से किया गया व्यय माना जाना चाहिए।"

(पृष्ठ 747)

हमारे मत में, उच्च न्यायालय ने इस आधार पर सही रूप से विचार किया है कि व्यय तथा करदाता के व्यवसाय के मध्य संबंध होना आवश्यक है।

करदाता-कंपनी की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री टी. ए. रामचन्द्रन ने प्रस्तुत किया है कि उक्त कसौटी वर्तमान वाद में पूर्ण होती है, क्योंकि सहायक कंपनियों के निदेशकों को पारिश्रमिक का भुगतान करने का उद्देश्य इन कंपनियों को अधिक लाभ अर्जित करने में सक्षम बनाना था, जो लाभांश के रूप में करदाता-कंपनी को प्राप्त होता। विद्वान वरीय अधिवक्ता ने *टाटा सन्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, बम्बई नगर* 18 आई.टी.आर. 460 तथा *जे. आर. पटेल एण्ड सन्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, गुजरात* 69 आई.टी.आर. 782 में बम्बई उच्च न्यायालय एवं गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णयों पर प्रबल अवलंबन किया है तथा यह तर्क किया है कि उच्च न्यायालय ने इन वादों में अंतर

करते हुए यह कहकर त्रुटि की है कि वे प्रबंध अभिकर्ताओं से संबंधित थे, जबकि वर्तमान वाद एक धारक कंपनी तथा उसकी सहायक कंपनियों से संबंधित है। श्री रामचन्द्रन ने तर्क किया है कि उक्त निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांत धारक कंपनी के वाद पर भी समान रूप से लागू होता है।

हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। हमारे मत में, उच्च न्यायालय ने सही रूप से इंगित किया है कि करदाता-कंपनी का व्यवसाय निवेश धारण करना है और यदि निवेश धारण करने के व्यवसाय के संबंध में कोई व्यय किया गया होता, तो उसे कटौती के रूप में अनुज्ञात किया जा सकता था। सहायक कंपनियों के निदेशकों को प्रबंधकीय पारिश्रमिक के भुगतान में किया गया व्यय, करदाता-कंपनी के निवेश धारण करने के व्यवसाय के संचालन में किया गया व्यय नहीं कहा जा सकता। करदाता-कंपनी इस व्यय को किए बिना भी अपने निवेश धारण कर सकती थी तथा लाभांश अर्जित कर सकती थी। चूँकि सहायक कंपनियाँ, करदाता-कंपनी द्वारा भुगतान किए गए उनके प्रबंधकीय पारिश्रमिक के कारण अर्जित संपूर्ण लाभ को लाभांश के रूप में वितरित करने के लिए बाध्य नहीं थीं तथा करदाता-कंपनी केवल उसी समय और उसी सीमा तक सहायक कंपनी से लाभांश प्राप्त करने की हकदार थी जब वह घोषित किया जाए, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि किए गए व्यय तथा करदाता-कंपनी के व्यवसाय के मध्य कोई प्रत्यक्ष तथा तात्कालिक संबंध था। *टाटा सन्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, बम्बई नगर* (उपरोक्त) तथा *जे. आर. पटेल एण्ड सन्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, गुजरात* (उपरोक्त) के निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होते।

टाटा सन्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, बम्बई नगर (उपरोक्त) में, करदाता एक अन्य कंपनी का प्रबंध अभिकर्ता था और प्रबंध अभिकरण अनुबंध के अधीन करदाता को एक निश्चित दर पर कमीशन देय था, जिसकी गणना प्रबंधित कंपनी के शुद्ध लाभ के आधार पर की जानी थी। सुसंगत वर्षों के दौरान करदाता ने स्वेच्छा से कुछ राशियों का भुगतान उस

बोनस के आधे भाग के रूप में किया, जिसका भुगतान प्रबंधित कंपनी ने अपने कुछ अधिकारियों को किया था, और उसने 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) के अधीन उक्त राशियों की कटौती का दावा किया। बम्बई उच्च न्यायालय ने ऐसी कटौती के लिए करदाता के दावे को इस दृष्टिकोण से स्वीकार किया कि वाणिज्यिक सिद्धांतों की दृष्टि से करदाता ने जो किया था, उसका उद्देश्य प्रबंधित कंपनी के लाभ में वृद्धि करना था और इस प्रकार अपने कमीशन में हिस्से को बढ़ाना था, और इसलिए करदाता द्वारा दावा की गई कटौती उसके व्यवसाय के प्रयोजनों के लिए पूर्णतः तथा अनन्यतः थी तथा 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) के अधीन ग्राह्य कटौती थी। राजस्व की ओर से प्रस्तुत इस तर्क पर विचार करते हुए कि भुगतान करदाता के कर्मचारियों को नहीं, बल्कि प्रबंधित कंपनी के कर्मचारियों को किया गया था — जो पूर्णतः भिन्न इकाई थी — उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की :

"यहाँ भी, यदि यह प्रदर्शित किया जा सके कि करदाता कंपनी और प्रबंधित कंपनी के मध्य अत्यंत महत्वपूर्ण संबंध था, जिसके कारण करदाता कंपनी के लिए प्रबंधित कंपनी के कर्मचारियों को भुगतान करना आवश्यक हो गया था, तो पुनः करदाता कंपनी हमें यह संतुष्ट कर सकती थी कि यह व्यय ऐसा था जो धारा 10(2)(15) के क्षेत्राधिकार में आता है। अब यह गंभीरतापूर्वक विवादित नहीं किया जा सकता कि बोनस का भुगतान प्रबंधित कंपनी द्वारा अपने कर्मचारियों को कंपनी के कार्य-संचालन की दक्षता बढ़ाने के लिए किया गया था। उस कंपनी की बढ़ी हुई दक्षता का परिणाम आनुषंगिक रूप से अधिक तथा बेहतर लाभ के रूप में होता और करदाता कंपनी, प्रबंधित कंपनी के कार्य-संचालन की अधिक दक्षता में उतनी ही रुचि रखती जितनी स्वयं प्रबंधित कंपनी रखती थी। जो कुछ भी प्रबंधित कंपनी के लाभ में वृद्धि करने की प्रवृत्ति रखता, वह करदाता कंपनी की आय और लाभ में भी वृद्धि करने की प्रवृत्ति रखता। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह भुगतान करते समय करदाता कंपनी

का कोई अप्रत्यक्ष अथवा गुप्त उद्देश्य था। एकमात्र उद्देश्य जिससे वह प्रेरित थी, पूर्णतः वाणिज्यिक तथा आर्थिक था, और वह यह था कि प्रबंधित कंपनी अधिक लाभ अर्जित करे ताकि परिणामस्वरूप उसका स्वयं का कमीशन बढ़ सके।" (पृष्ठ 468)

उस वाद में प्रबंधित कंपनी के बढ़े हुए लाभ तथा करदाता को देय प्रबंध अभिकरण कमीशन के मध्य प्रत्यक्ष संबंध था, क्योंकि प्रबंध अभिकरण कमीशन, प्रबंधित कंपनी के शुद्ध लाभ का एक निर्धारित प्रतिशत था। जैसा कि पूर्व में इंगित किया गया है, सहायक कंपनी के बढ़े हुए लाभ तथा करदाता-कंपनी द्वारा सहायक कंपनी में धारित अंशों पर लाभांश के रूप में अर्जित लाभ के मध्य ऐसा कोई संबंध नहीं था।

जे. आर. पटेल एण्ड सन्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, गुजरात (उपरोक्त) में, करदाता प्रबंध अभिकर्ता था और उसका प्रबंध निदेशक, प्रबंधित कंपनी का भी निदेशक था। 1 अप्रैल, 1956 को कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रवर्तन में आने से पूर्व, वह करदाता से मासिक वेतन प्राप्त कर रहा था और इसके अतिरिक्त वह प्रबंधित कंपनी के तकनीकी सलाहकार के रूप में मासिक पारिश्रमिक तथा प्रबंधित कंपनी द्वारा निर्मित एवं विक्रय किए गए हील्ड्स और रीड्स के विक्रय मूल्य पर एक निर्धारित दर से कमीशन भी प्राप्त कर रहा था। कंपनी अधिनियम, 1956 के पारित होने के पश्चात्, उसके द्वारा प्राप्त किया जा सकने वाला पारिश्रमिक कम कर दिया गया और उसे कमीशन भी प्राप्त नहीं हो सकता था। अतः, करदाता ने उसके परिलब्धियों में वृद्धि कर दी। करदाता द्वारा किया गया उक्त अतिरिक्त भुगतान अस्वीकृत कर दिया गया और किए गए व्यय को उस राशि तक सीमित कर दिया गया जिसका भुगतान कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रवर्तन में आने से पूर्व किया जा रहा था। गुजरात उच्च न्यायालय ने धारित किया कि करदाता ने अपने प्रबंध निदेशक को अतिरिक्त भुगतान इस उद्देश्य से किया था कि प्रबंधित कंपनी के कार्यों की समुचित देखरेख की जा सके और उसके पारिश्रमिक के परिणामस्वरूप प्रबंधित कंपनी का लाभ तथा करदाता के कमीशन में उसका हिस्सा बढ़ गया और इसलिए करदाता द्वारा अपने प्रबंध निदेशक को

भुगतान की गई अतिरिक्त राशि उसके व्यवसाय के प्रयोजन के लिए पूर्णतः तथा अनन्यतः व्ययित की गई थी तथा 1922 के अधिनियम की धारा 10(2)(15) के अधीन ग्राह्य कटौती थी। *टाटा सन्स लिमिटेड* (उपरोक्त) के निर्णय पर अवलंबन किया गया था। वह भी ऐसा वाद था, जिसमें प्रबंध अभिकरण कमीशन के रूप में करदाता का लाभ, प्रबंधित कंपनी के लाभ से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध था, जबकि वर्तमान वाद में स्थिति ऐसी नहीं है।

करदाता-कंपनी द्वारा अपनी ओर से प्रस्तुत वह वैकल्पिक दावा, जिसमें अपने उन निदेशकों को भुगतान की गई राशियों के संबंध में कटौती की मांग की गई थी जो वित्त समिति के सदस्य भी थे, उच्च न्यायालय द्वारा सही रूप से अस्वीकार कर दिया गया है। इसका कारण यह है कि करदाता-कंपनी द्वारा पारित संकल्प में निदेशकों के साथ, चाहे वे वित्त समिति के सदस्य हों अथवा नहीं, एक वर्ग के रूप में व्यवहार किया गया था और उन सभी के संबंध में करदाता-कंपनी ने व्यय केवल इसलिए वहन किया था क्योंकि सहायक कंपनियाँ उन्हें उस सीमा तक पारिश्रमिक प्रदान नहीं कर सकती थीं। यह तथ्य कि वे करदाता-कंपनी के निदेशक थे तथा वित्त समिति के सदस्य थे, उनके लिए देय पारिश्रमिक का वहन करते समय ध्यान में नहीं रखा गया था। इन परिस्थितियों में, करदाता-कंपनी द्वारा दायर 1980 की दीवानी अपील संख्या 7-11 भी निरस्त किए जाने योग्य हैं।

परिणामस्वरूप, राजस्व द्वारा दायर वर्ष 1980 की दीवानी अपील संख्याएँ 139-142 तथा करदाता-कंपनी द्वारा दायर वर्ष 1980 की दीवानी अपील संख्याएँ 7-11 निरस्त की जाती हैं। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

बी. के.

अपीलें निरस्त।

खंडन (डिस्क्लेमर) - स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।